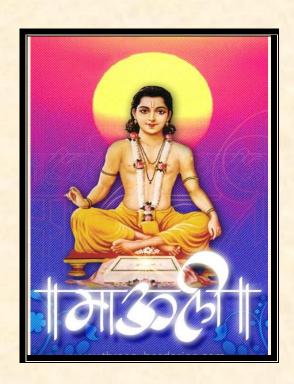
॥ श्रीहरि ॥ ॥ श्री भावार्थदीपिका ॥ ॥ अध्याय दहावा ॥

< (2) > < (2) > < (2) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3)



\$\racks\\$\rack

हेचि आम्हां करणे काम । बीज वाढवावे नाम ॥

संतचरणरज बाळकृष्ण प्रकाश कदम जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर

॥ अध्याय दहावा ॥ ॥ विभूतियोगः॥

<</p>

नमो विशदबोधविदग्धा । विद्यारविंदप्रबोधा । पराप्रमेयप्रमदा । विलासिया ॥ १ ॥ नमो संसारतमसूर्या । अपरिमितपरमवीर्या । तरुणतरतूर्या । लालनलीला ॥ २ ॥ नमो जगदखिलपालना । मंगळमणिनिधाना । सज्जनवनचंदना । आराध्यलिंगा ॥ ३ ॥ नमो चतुरचित्तचकोरचंद्रा । आत्मानुभवनरेंद्रा । श्रुतिसारसमुद्रा । मन्मथमन्मथा ॥ ४ ॥ नमो सुभावभजनभाजना । भवेभकुंभभंजना । विश्वोद्भवभुवना । श्रीगुरुराया ॥ ५ ॥ तुमचा अनुग्रहो गणेशु । जैं दे आपुला सौरसु । तैं सारस्वतीं प्रवेशु । बाळकाही आथी ॥ ६ ॥ जी दैविकीं उदार वाचा । जैं उद्देशु दे नाभिकाराचा । तैं नवरससुधाब्धीचा । थावो लाभे ॥ ७ ॥ जी आपुलिया स्नेहाची वागेश्वरी । जरी मुकेयातें अंगिकारी । तो वाचस्पतीशीं करी । प्रबंधुहोडा ॥ ८ ॥ हें असो दिठी जयावरी झळके । कीं हा पद्मकरु माथां पारुखे । तो जीवचि परि तुके । महेशेंसीं ॥ ९ ॥ एवढें जिये महिमेचें करणें । तें वाचाबळें वानूं मी कवणें । कां सूर्याचिया आंगा उटणें। लागत असे ॥ १०॥ केउता कल्पतरुवरी फुलौरा । कायसेनि पाहुणेरु क्षीरसागरा

\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

। कवणें वासीं कापुरा । सुवासु देवों ॥ ११ ॥ चंदनातें कायसेनि चर्चावें । अमृतातें केउतें रांधावें । गगनावरी उभवावें । घडे केवीं ॥ १२ ॥ तैसें श्रीगुरूचें महिमान । आकळितें कें असे साधन हें जाणोनि मियां नमन । निवांत केलें ॥ १३ ॥ जरी प्रज्ञेचेनि आथिलेपणें । श्रीगुरूसामर्थ्या रूप करूं म्हणे । तरि तें मोतियां भिंग देणें । तैसें होईल ॥ १४ ॥ कां साडेपंधरया रजतवणी । तैशीं स्तुतींचीं बोलणीं । उगियाचि माथा ठेविजे चरणीं । हेंचि भलें ॥ १५ ॥ मग म्हणितलें जी स्वामी । भलेनि ममत्वें देखिलें तुम्हीं । म्हणौनि कृष्णार्जुनसंगमीं । प्रयागवटु जाहलों ॥ १६ ॥ मागां दूध दे म्हणतिलयासाठीं । आघिवया क्षीराब्धीची करूनि वाटी । उपमन्यूपुढें धूर्जटी । ठेविली जैसी ॥ १७ ॥ ना तरी वैकुंठपीठनायकें । रुसला ध्रुव कवतिकें । बुझाविला देऊनि भातुकें । ध्रुवपदाचें ॥ १८ ॥ तैसी जे ब्रह्मविद्यारावो । सकळ शास्त्रांचा विसंवता ठावो । ते भगवदगीता वोंविये गावों । ऐसें केलें ॥ १९ ॥ जे बोलिणयाचे रानीं हिंडतां । नायिकजे फळिलिया अक्षराची वार्ता । परि ते वाचाचि केली कल्पलता । विवेकाची ॥२०॥ होती देहबुद्धी एकसरी । ते आनंदभांडारा केली वोवरी । मन गीतार्थसागरीं । जळशयन जालें ॥ २१ ॥ ऐसें एकेक देवांचें करणें । तें अपार बोलों केवीं मी जाणें । तर्ही अनुवादलों धीटपणें । ते उपसाहिजो जी ॥ २२ ॥

<</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$>
\$>
\$>

आतां आपुलेनि कृपाप्रसादें । मियां भगवद्गीता वोंवीप्रबंधें । पूर्वखंड विनोदें । वाखाणिलें ॥ २३ ॥ प्रथमीं अर्जुनाचा विषादु । दुजीं बोलिला योगु विशदु । परि सांख्यबुद्धीसि भेदु । दाऊनियां ॥ २४ ॥ तिजीं केवळ कर्म प्रतिष्ठिलें । तेंचि चतुर्थीं ज्ञानेंशीं प्रगटिलें । पंचमीं गव्हरिलें । योगतत्त्व ॥ २५ ॥ तेचि षष्ठामाजीं प्रगट । आसनालागोनि स्पष्ट । जीवात्मभाव एकवट । होती जेणें ॥ २६ ॥ तैसी जे योगस्थिती । आणि योगभ्रष्टां जे गती । तें आघवीचि उपपत्ती । सांगितली षष्ठीं ॥ २७ ॥ तयावरी सप्तमीं । प्रकृतिपरिहार उपक्रमीं । करूनि भजती जे पुरुषोत्तमीं । ते बोलिले चार्ही ॥ २८ ॥ पाठीं सप्तप्रश्नविधि । बोलोनि प्रयाणसमयसिद्धी । एवं सकळ वाक्यावधि । अष्टमाध्यायीं ॥ २९ ॥ मग शब्दब्रह्मीं असंख्याकें । जेतुला कांहीं अभिप्राय पिके । तेतुला महाभारतें एकें । लक्षें जोडे ॥ ३० ॥ तिये आघवांचि जें महाभारतीं । तें लाभे कृष्णार्जुनवाचोक्तीं । आणि जो अभिप्रावो सातेंशतीं । तो एकलाचि नवमीं ॥३१॥ म्हणौनि नवमींचिया अभिप्राया । सहसा मुद्रा लावावया । बिहाला मग मी वायां । गर्व कां करूं ॥ ३२ ॥ अहो गूळासाखरे मालयाचे । हे बांधे तरी एकाचि रसाचे । परि स्वाद गोडियेचे । आनआन जैसे ॥ ३३ ॥ एक जाणोनियां बोलती । एक ठायें ठावो जाणविती ।

\$><\$><\$><\$><\$><\$>

एक जाणों जातां हारपती । जाणते गुणेंशीं ॥ ३४ ॥ हें ऐसें अध्याय गीतेचे । परि अनिर्वाच्यपण नवमाचें । तो अनुवादलों हें तुमचें । सामर्थ्य प्रभू ॥ ३५ ॥ अहो एकाचि शाटी तिपन्नली । एकीं सृष्टीवरी सृष्टी केली । एकीं पाषाणीं वाऊनि उतरलीं । समुद्रीं कटकें ॥ ३६ ॥ एकीं आकाशीं सूर्यातें धरिलें । एकीं चुळींचि सागरातें भरिलें । तैसें मज मुकयाकरवीं बोलविलें । अनिर्वाच्य तुम्हीं ॥३७॥ परि हें असो एथ ऐसें । राम रावण झुंजिन्नले कैसे । राम रावण जैसे । मीनले समरीं ॥ ३८ ॥ तैसें नवमीं कृष्णाचें बोलणें। तें नवमीचियाचि ऐसें मी म्हणें । या निवाडा तत्त्वज्ञु जाणें । जया गीतार्थु हातीं ॥ ३९ ॥ एवं नवही अध्याय पहिले । मियां मतीसारिखे वाखाणिले । आतां उत्तरखंड उवाइलें । ग्रंथाचें ऐका ॥ ४० ॥ जेथ विभूति प्रतिविभूती । प्रस्तुत अर्जुना सांगिजेती । ते विदग्धा रसवृत्ती । म्हणिपैल कथा ॥ ४१ ॥ देशियेचेनि नागरपणें । शांतु शृंगारातें जिणें । तरि ओंविया होती लेणें । साहित्यासि ॥ ४२ ॥ मूळ ग्रंथींचिया संस्कृता । वरि मर्हाठी नीट पढतां । अभिप्राय मानलिया उचिता । कवण भूमी हें न चोजवे ॥४३॥ जैसें अंगाचेनि सुंदरपणें । लेणिया आंगचि होय लेणें । तेथ अळंकारिलें कवण कवणें । हें निर्वचेना ॥ ४४ ॥ तैसी देशी आणि संस्कृत वाणी । एका भावार्थाच्या सुखासनीं । शोभती आयणी । चोखट आइका ॥ ४५ ॥

< (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3)

उठाविलया भावा रूप । किरतां रसवृत्तीचें लागे वडप । चातुर्य म्हणे पडप । जोडलें आम्हां ॥ ४६ ॥ तैसें देशियेचें लावण्य । हिरोनि आणिलें तारुण्य । मग रचिलें अगण्य । गीतातत्त्व ॥ ४७ ॥ जो चराचर परमगुरु । चतुर चित्तचमत्कारु । तो ऐका यादवेश्वरु । बोलता जाहला ॥ ४८ ॥ ज्ञानदेव निवृत्तीचा म्हणे । ऐसें बोलिलें श्रीहरी तेणें । अर्जुना आघवियाची मातु अंतःकरणें । धडौता आहासि ॥४९॥

\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

श्रीभगवानुवाच । भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः । यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १॥

आम्हीं मागील जें निरूपण केलें । तें तुझें अवधानचि पाहिलें । तवं टाचें नव्हें भलें । पुरतें आहे ॥ ५० ॥ घटीं थोडेसें उदक घालिजे । तेणें न गळे तरी वरिता भरिजे । ऐसा परिसौन पाहिलासि तवं परिसविजे । ऐसेंचि होतसे ॥५१॥ अवचितयावरी सर्वस्व सांडिजे । मग चोख तरी तोचि भांडारी कीजे । तैसा किरीटी तूं आतां माझें । निजधाम कीं ॥५२॥ ऐसें अर्जुना येउतें सर्वेश्वरें । पाहोनि बोलिलें अत्यादरें । गिरी देखोनि सुभरें । मेघु जैसा ॥ ५३ ॥ तैसा कृपाळुवांचा रावो । म्हणे आइकें गा महाबाहो । सांगितलाचि अभिप्रावो । सांगेन पुढती ॥ ५४ ॥ पैं प्रतिवर्षीं क्षेत्र पेरिजे । पिकाची जंव जंव वाढी देखिजे ।

यालागीं नुबगिजे । वाहो करितां ॥ ५५ ॥ पुढतपुढती पुटें देतां । जोडे वानियेची अधिकता । म्हणौनि सोनें पंडुसुता । शोधूंचि आवडे ॥ ५६ ॥ तैसें एथ पार्था । तुज आभार नाहीं सर्वथा । आम्ही आपुलियाचि स्वार्था । बोलों पुढती ॥ ५७ ॥ जैसें बाळका लेवविजे लेणें । तया शृंगारा बाळ काइ जाणे परि ते सुखाचे सोहळे भोगणें । माउलिये दिठी ॥ ५८ ॥ तैसें तुझें हित आघवें। जंव जंव कां तुज फावे। तंव तंव आमुचें सुख दुणावे । ऐसें आहे ॥ ५९ ॥ आतां अर्जुना असो हे विकडी । मज उघड तुझी आवडी । म्हणौनि तृप्तीची सवडी । बोलतां न पडे ॥ ६० ॥ आम्हां येतुलियाचि कारणें । तेंचि, तें तुजशीं बोलणें । परि असो हें अंत:करणें । अवधान देई ॥ ६१ ॥ तरी ऐकें गा सुवर्म । वाक्य माझें, परम । जें अक्षरें लेऊनी परब्रह्म । तुज खेंवासि आलें ॥ ६२ ॥ परी किरीटी तूं मातें । नेणसी ना निरुतें । तरि तो गा जो मी एथें। तें विश्वचि हें ॥ ६३ ॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः । अहमादिहि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २॥

एथ वेद मुके जाहाले । मन पवन पांगुळले । रातीविण मावळले । रविशशी जेथ ॥ ६४ ॥ अगा उदरींचा गर्भु जैसा । न देखें आपुलिये मातेची वयसा ।

मी आघवेया देवां तैसा । नेणवे कांहीं ॥ ६५ ॥ आणि जळचरां उदधीचें मान । मशका नोलांडवेचि गगन । तेवीं महर्षींचें ज्ञान । न देखेचि मातें ॥ ६६ ॥ मी कवण पां केतुला । कवणाचा कें जाहला । या निरुती करितां बोला । कल्प गेले ॥ ६७ ॥ कां जे महर्षीं आणि या देवां । येरां भूतजातां सर्वां । मी आदि म्हणौनि पांडवा । अवघड जाणतां ॥ ६८ ॥ उतरलें उदक पर्वत वळघे । जरी झाड वाढत मुळीं लागे । तरी मियां जालेनि जगें। जाणिजे मातें॥ ६९॥ कां गाभेवनें वटु गिंवसवे । जरी तरंगीं सागरू सांठवे । कां परमाणूमाजीं सामावे । भूगोलु हा ॥ ७० ॥ तरी मियां जालिया जीवां । महर्षीं अथवा देवां । मातें जाणावया होआवा । अवकाशु गा ॥ ७१ ॥ ऐसाही जरी विपायें । सांड्रिन पुढीले पाये । सर्वेंद्रियांसि होये । पाठिमोरा जो ॥ ७२ ॥ प्रवर्तलाही वेगीं बहुडे । देह सांडूनि मागलीकडे । महाभूतांचिया चढे । माथयावरी ॥ ७३ ॥ यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् । असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३॥

तेथ राहोनि ठायठिके । स्वप्रकाशें चोखें ।

अजत्व माझें देखे । आपुलिया डोळां ॥ ७४ ॥

मी आदीसिं परु । सकळलोकमहेश्वरु ।

ऐसिया मातें जो नरु । यापरी जाणें ॥ ७५ ॥ तो पाषाणांमाजीं परिसु । जैसा रसाआंतु सिद्धरसु । तैसा मनुष्याआंतु तो अंशु । माझाचि जाण ॥ ७६ ॥ तें चालतें ज्ञानाचें बिंब । तयाचे अवयव ते सुखाचे कोंभ । येर माणुसपण तें भांब । लौकिक भागु ॥ ७७ ॥ अगा अवचिता कापुरा- । माजीं सांपडला हिरा । वरी पडिलिया नीरा । न निगे केवीं ॥ ७८ ॥ तैसा मनुष्यलोकाआंतु । तो जरी जाहला प्राकृतु । तर्ही प्रकृतिदोषाची मातु । नेणेंचि कीं ॥ ७९ ॥ तो आपसर्येचि सांडिजे पापीं । जैसा जळत चंदनु सपीं । तेवीं मातें जाणें तो संकल्पीं । वर्जूनि घापे ॥ ८० ॥ तेंचि आमुतें कैसें जाणिजे। ऐसें कल्पी जरी चित्त तुझें। तरी मी ऐसा हें माझें । भाव ऐकें ॥ ८१ ॥ जे वेगळालिया भूतीं । सारिखे होऊनि प्रकृती । विखुरले आहेती त्रिजगतीं । आघविये ॥ ८२ ॥

<</p>

<</p>

<</p>
<</p>
<</p>
<</p>

<</p>

</

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः । सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥ ४॥

अहिंसा समता तुइष्टास्तपो दानं यशोऽयशः । भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५॥

तेथ प्रथम जाण बुद्धी । मग ज्ञान जें निरवधी । असंमोह सहनसिद्धी । क्षमा सत्य ॥ ८३ ॥ मग शम दम दोन्ही । सुखदु:ख वर्ते जें जनीं ।

अर्जुना भावाभाव मानीं । भावाचिमाजीं ॥ ८४ ॥ पैं भय आणि निर्भयता । अहिंसा आणि समता । तुइष्टि तप पंडुसुता । दान जें गा ॥ ८५ ॥ अगा यश अपकीर्ती । हे जे भाव सर्वत्र दिसती । ते मजिच पासूनि होती । भूतांचिया ठायीं ॥ ८६ ॥ जैसीं भूतें आहाति सिनानीं । तैसेचि हेही वेगळाले मानीं । एक उपजती माझ्या ज्ञानीं । एक नेणती मातें ॥ ८७ ॥ प्रकाशु आणि कडवसें । हें सूर्याचिस्तव जैसें । प्रकाश उदयीं दिसे । तम अस्तुसीं ॥ ८८ ॥ आणि माझें जाणणें नेणणें । तें तंव भूतांचिया दैवाचें करणें । म्हणौनि भूतीं भावाचें होणें । विषम पडे ॥ ८९ ॥ यापरी माझिया भावीं । हे जीवसृष्टि आहे आघवी । गुंतली असे जाणावी । पंडुकुमरा ॥ ९० ॥ आतां इये सृष्टीचे पालक । जयां आधीन वर्तती लोक । ते अकरा भाव आणिक । सांगेन तुज ॥ ९१ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारी मनवस्तथा । मद्भवा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६॥

तरी आघवांचि गुणीं वृद्ध । जे महर्षींमाजीं प्रबुद्ध । कश्यपादि प्रसिद्ध । सप्तऋषी ॥ ९२ ॥ आणिकही सांगिजतील । जे कां चौदाआंतुल मुद्दल । स्वायंभू मुख्य वडील । चारी मनु ॥ ९३ ॥ ऐसें हे अकरा । माझ्या मनीं जाहाले धनुर्धरा ।

सृष्टीचिया व्यापारा- । लागोनियां ॥ ९४ ॥ जैं लोकांची व्यवस्था न पडे । जैं या त्रिभुवनाचे कांहीं न मांडे । तैं महाभूतांचे दळवाडें । अचुंबित असे ॥ ९५ ॥ तैंचि हे जाहाले । मग इहीं लोक केले । तेथ अध्यक्ष रचूनि ठेविले । इहीं जन ॥ ९६ ॥ म्हणौनि अकराही हे राजा । मग येर जग यांचिया प्रजा । एवं विश्वविस्तारु हा माझा । ऐसेंचि जाण ॥ ९७ ॥ पाहें पां आरंभीं बीज एकलें । मग तेंचि विरूढिलया बूड जाहालें । बुडीं कोंभ निघाले । खांदियांचे ॥ ९८ ॥ खांदियांपासूनि अनेका । फुटलिया नाना शाखा । शाखांस्तव देखा । पल्लव पानें ॥ ९९ ॥ पल्लवीं फूल फळ । एवं वृक्षत्व जाहालें सकळ । तें निर्धारितां केवळ । बीजिच आघवें ॥ १०० ॥ तैंसे मी एकचि पहिलें। मग मी तेंचि मनातें व्यालें। तेथ सप्तऋषि जाहाले । आणि चारी मनु ॥ १०१ ॥ इहीं लोकपाळ केले । लोकपाळीं विविध लोक सृजिले । लोकांपासूनि निपजले । प्रजाजात ॥ १०२ ॥ ऐसेनि हें विश्व येथें । मीचि विस्तारिलोंसें निरुतें । परी भावाचेनि हातें । माने जया ॥ १०३ ॥ एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः । सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७॥

<</p>

यालागीं सुभद्रापती । हे भाव इया माझिया विभूती । आणि यांचिया व्याप्ती । व्यापिलें जग ॥ १०४ ॥ म्हणौनि गा यापरी । ब्रह्मादिपिपीलिकावरी । मीवांचूनि दुसरी । गोठी नाहीं ॥ १०५ ॥ ऐसें जाणे जो साचें । तया चेइरें जाहालें ज्ञानाचें । म्हणौनि उत्तमाधम भेदाचें । दुःस्वप्न न देखे ॥ १०६ ॥ मी माझिया विभूती । विभूतीं अधिष्ठिलिया व्यक्ती । हें आघवें योगप्रतीती । एकचि मानी ॥ १०७ ॥ म्हणौनि निःशंकें येणें महायोगें । मज मीनला मनाचेनि आंगें । एथ संशय करणें न लगे । तो त्रिशुद्धी जाहला ॥ १०८ ॥ कां जे ऐसें किरीटी । मातें भजे जो अभेदा दिठी । तयाचिये भजनाचे नाटीं । सूती मज ॥ १०९ ॥ म्हणौनि अभेदें जो भिक्तयोगु । तथ शंका नाहीं नये खंगु । करितां ठेला तरी चांगु । तें सांगितलें षष्ठीं ॥ ११० ॥ तोचि अभेदु कैसा । हें जाणावया मानसा । साद जाली तरी परियेसा । बोलिजेल ॥ १११ ॥

<%><%><%><%><%><%><%><%><%>>

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते । इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८॥

तिर मीचि एक सर्वां । या जगा जन्म पांडवा । आणि मजिचपासूनि आघवा । निर्वाहो यांचा ॥ ११२ ॥ कल्लोळमाळा अनेगा । जन्म जळींचि पैं गा । आणि तयां जळिच आश्रयो तरंगा । जीवनही जळ ॥ ११३ ॥ ऐसें आघवाचि ठायीं । तया जळिच जेवीं पाहीं ।
तैसा मीवांचूिन नाहीं । विश्वीं इये ॥ ११४ ॥
ऐसिया व्यापका मातें । मानूिन जे भजती भलतेथें ।
परि साचोकारें उदितें । प्रेमभावें ॥ ११५ ॥
देश काळ वर्तमान । आघवें मजसीं करूिन अभिन्न ।
जैसा वायु होऊन गगन । गगनींचि विचरे ॥ ११६ ॥
ऐसेनि जे निजज्ञानी । खेळत सुखें त्रिभुवनीं ।
जगद्रूपा मनीं । सांठऊिन मातें ॥ ११७ ॥
जें जें भेटे भूत । तें तें मानिजे भगवंत ।
हा भिक्तयोगु निश्चित । जाण माझा ॥ ११८ ॥

<</p>

</

मिच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् । कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९॥

चित्तं मीचि जाहाले । मियांचि प्राणें धाले । जीवों मरों विसरले । बोधाचिया भुली ॥ ११९ ॥ मग तया बोधाचेनि माजे । नाचती संवादसुखाचीं भोजें । आतां एकमेकां घेपे दीजे । बोधचि वरी ॥ १२० ॥ जैशीं जवळकेंचीं सरोवरें । उचंबळिलया कालवती परस्परें । मग तरंगासि धवळारें । तरंगिच होती ॥ १२१ ॥ तैसी येरयेरांचिये मिळणी । पडत आनंदकल्लोळांची वेणी । तथ बोध बोधाचीं लेणीं । बोधेंचि मिरवी ॥ १२२ ॥ जैसें सूर्यें सूर्यातें वोंवाळिलें । कीं चंद्रें चंद्रम्या क्षेम दिधलें । ना तरी सरिसेनि पाडें मीनले । दोनी वोघ ॥ १२३ ॥

तैसें प्रयाग होत सामरस्याचें । वरी वोसाण तरत सात्त्विकाचें । ते संवादचतुष्पर्थींचे । गणेश जाहले ॥ १२४ ॥ तेव्हां तया महासुखाचेनि भरें । धांवोनि देहाचिये गांवाबाहेरें । मियां धाले तेणें उद्गारें । लागती गाजों ॥ १२५ ॥ पैं गुरुशिष्यांचिया एकांतीं । जे अक्षरा एकाची वदंती । ते मेघाचियापरी त्रिजगतीं । गर्जती सैंघ ॥ १२६ ॥ जैसी कमळकळिका जालेपणें । हृदयींचिया मकरंदातें राखों नेणें । दे राया रंका पारणें । आमोदाचें ॥ १२७ ॥ तैसेंचि मातें विश्वीं कथित । कथितेनि तोषें कथूं विसरत । मग तया विसरामाजीं विरत । आंगें जीवें ॥ १२८ ॥ ऐसें प्रेमाचेनि बहुवसपणें । नाहीं राती दिवो जाणणें । केलें माझें सुख अव्यंगवाणें । आपणपेयां जिहीं ॥ १२९ ॥

<</p>

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् । ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १०॥

तयां मग जें आम्ही कांहीं । द्यावें अर्जुना पाहीं ।
ते ठायींचीच तिहीं । घेतली सेल ॥ १३० ॥
कां जे ते जिया वाटा । निगाले गा सुभटा ।
ते सोय पाहोनि अव्हांटा । स्वर्गापवर्ग ॥ १३१ ॥
म्हणौनि तिहीं जें प्रेम धिरलें । तेंचि आमुचें देणें उपाइलें ।
पिर आम्हीं देयावें हेंहि केलें । तिहींची म्हणिपे ॥ १३२ ॥
आतां यावरी येतुलें घडे । जें तेंचि सुख आगळें वाढें ।
आणि काळाची दृष्टि न पडे । हें आम्हां करणें ॥ १३३ ॥

लळेयाचिया बाळका किरीटी । गवसणी करूनि स्नेहाचिया दिठी । जैसी खेळतां पाठोपाठीं । माउली धांवे ॥ १३४ ॥ तें जो जो खेळ दावी । तो तो पुढें सोनयाचा करूनि ठेवी । तैसी उपास्तीची पदवी । पोषित मी जायें ॥ १३५ ॥ जिये पदवीचेनि पोषकें । ते मातें पावती यथासुखें । हे पाळती मज विशेखें । आवडे करूं ॥ १३६ ॥ पैं गा भक्तासि माझें कोड । मज तयाचे अनन्यगतीची चाड । कां जे प्रेमळांचें सांकड । आमुचिया घरीं ॥ १३७ ॥ पाहें पां स्वर्ग मोक्ष उपाइले । दोन्ही मार्ग तयाचिये वाहणी केले । आम्हीं आंगही शेखीं वेंचिलें । लक्ष्मियेसीं ॥ १३८ ॥ परि आपणपेंवीण जें एक । तें तैसेंचि सुख साजुक । सप्रेमळालागीं देख । ठेविलें जतन ॥ १३९ ॥ हा ठायवरी किरीटी । आम्ही प्रेमळु घेवों आपणयासाठीं । या बोलीं बोलिजत गोष्टी । तैसिया नव्हती गा ॥ १४० ॥

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः । नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११॥ }><\\\}><\\\}><\\\}><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\$\$

म्हणौनि मज आत्मयाचा भावो । जिहीं जियावया केला ठावो । एक मीवांचूिन वावो । येर मानिलें जिहीं ॥ १४१ ॥ तयां तत्त्वज्ञां चोखटां । दिवी पोतासाची सुभटा । मग मीचि होऊनि दिवटा । पुढां पुढां चालें ॥ १४२ ॥ अज्ञानाचिये राती- । माजीं तमाचि मिळणी दाटती । ते नाशूिन घालीं परौती । तयां करीं नित्योदयो ॥ १४३ ॥

ऐसें प्रेमळाचेनि प्रियोत्तमें । बोलिलें जेथ पुरुषोत्तमें ।
तेथ अर्जुन मनोधमें । निवालों म्हणतसे ॥ १४४ ॥
हां हो जी अवधारा । भला केरु फेडिला संसारा ।
जाहलों जननीजठरजोहरा- । वेगळा प्रभू ॥ १४५ ॥
जी जन्मलेपण आपुलें । हें आजि मियां डोळां देखिलें ।
जीवित हातां चढलें । आवडतसें ॥ १४६ ॥
आजि आयुष्या उजवण जाहली । माझिया दैवा दशा उदयली
। जे वाक्यकृपा लाधली । दैविकेनि मुखें ॥ १४७ ॥
आतां येणें वचन तेजाकारें । फिटलें आंतील बाहेरील आंधारें
। म्हणौनि देखतसें साचोकारें । स्वरूप तुझें ॥ १४८ ॥

अर्जुन उवाच । परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् । पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२॥

तरी होसी गा तूं परब्रह्म । जें या महाभूतां विसंवतें धाम ।
पिवत्र तूं परम । जगन्नाथा ॥ १४९ ॥
तूं परम दैवत तिहीं देवां । तूं पुरुष जी पंचिवसावा ।
दिव्य तूं प्रकृतिभावा- । पैलीकडील ॥ १५० ॥
अनादिसिद्ध तूं स्वामी । जो नाकिळजसी जन्मधर्मीं ।
तो तूं हें आम्ही । जाणितलें आतां ॥ १५१ ॥
तूं या कालत्रयासि सूत्री । तूं जीवकळेची अधिष्ठात्री ।
तूं ब्रह्मकटाहधात्री । हें कळलें फुडें ॥ ५२ ॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिनारदस्तथा । असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥ १३॥

<</p>

<</p>
<</p>
<</p>
<</p>
<</p>
<</p>
<</p>

<

पैं आणिकही एक परी । इये प्रतीतीची येतसे थोरी । जे मागें ऐसेंचि ऋषीश्वरीं । सांगितलें तूंतें ॥ १५३ ॥ परि तया सांगितिलयाचें साचपण । हें आतां माझें देखतसे अंतःकरण । जे कृपा केली आपण । म्हणौनि देवा ॥१५४॥ ए-हवीं नारदु अखंड जवळां ये । तोही ऐसेंचि वचनीं गाये । परि अर्थ न बुजोनि ठाये । गीतसुखचि ऐकों ॥ १५५ ॥ जी आंधळेयांच्या गांवीं । आपणपें प्रगटलें रवी । तरी तिहीं वोतपलीचि घ्यावी । वांचूनि प्रकाशु कैंचा ॥१५६॥ परि देवर्षि अध्यात्म गातां । आहाच रागांगेंसीं जे मधुरता । तेचि फावे येर चित्ता । नलगेचि कांहीं ॥ १५७ ॥ पैं असिता देवलाचेनि मुखें। मी एवंविधा तूंतें आइकें। परी तैं बुद्धि विषयविखें । घारिली होती ॥ १५८ ॥ विषयविषाचा पडिपाडू । गोड परमार्थु लागे कडू । कडू विषय तो गोडू । जीवासी जाहला ॥ १५९ ॥ आणि हें आणिकांचें काय सांगावें । राउळा आपणचि येऊनि व्यासदेवें । तुझें स्वरूप आघवें । सर्वदा सांगिजे ॥ १६० ॥ परि तो अंधारीं चिंतामणि देखिला । जेवीं नव्हे या बुद्धी उपेक्षिला । पाठीं दिनोदयीं वोळखिला । होय म्हणौनि ॥१६१॥ तैसीं व्यासादिकांचीं बोलणीं । तिया मजपाशीं चिद्रत्नांचिया खाणी । परि उपेक्षिल्या जात होतीया तरणी । तुजवीण कृष्णा ॥ १६२ ॥

सर्वमेतहतं मन्ये यन्मां वदिस केशव । न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ १४॥

ते आतां वाक्यसूर्यकर तुझे फांकले । आणि ऋषीं मार्ग होते जे कथिले । तयां आघवियांचेंचि फिटलें । अनोळखपण ॥१६३॥ जी ज्ञानाचें बीज तयांचे बोल । माजीं हृदयभूमिके पिडले सखोल । वरि इये कृपेची जाहाली वोल । म्हणौनि संवाद फळेंशीं उठलें ॥१६४॥ अहो नारदादिकां संतां । त्यांचिया उक्तिरूप सरितां । महोदधीं जाहलों अनंता । संवादसुखाचा ॥ १६५ ॥ प्रभु आघवेनि येणें जन्में । जियें पुण्यें केलीं मियां उत्तमें । तयांचीं न ठकतीचि अंगीं कामें । सद्गुरु तुवां ॥ १६६ ॥ ए-हवीं विडलविडलांचेनि मुखें। मी सदां तूंतें कानीं आइकें। परि कृपा न कीजेचि तुवां एकें । तंव नेणवेचि कांहीं ॥१६७॥ म्हणौनि भाग्य जैं सानुकूळ । जालिया केले उद्यम सदां सफळ । तैसें श्रुताधीत सकळ । गुरुकृपा साच ॥ १६८ ॥ जी बनकरु झाडें सिंपी जीवेंसाटीं । पाडूनि जन्में काढी आटी । परि फळेंसी तैंचि भेटी । जैं वसंतु पावे ॥ १६९ ॥ अहो विषमा जैं वोहट पडे । तैं मधुर तें मधुर आवडे । पैं रसायनें तैं गोडें । जैं आरोग्य देहीं ॥ १७० ॥ कां इंद्रियें वाचा प्राण । यां जालियांचे तैंचि सार्थकपण । जैं चैतन्य येऊनि आपण । संचरे माजीं ॥ १७१ ॥ तैसें शब्दजात आलोडिलें । अथवा योगादिक जें अभ्यासिलें । तें तैंचि म्हणों ये आपुलें । जैं सानुकूल श्रीगुरु ॥ १७२ ॥ ऐसिये जालिये प्रतीतीचेनि माजें । अर्जुन निश्चयाचि नाचतुसें

भोजें । तेवींचि म्हणे देवा तुझें । वाक्य मज मानलें ॥१७३॥ तिर साचिच हें कैवल्यपती । मज त्रिशुद्धी आली प्रतीती । जे तूं देवदानवांचिये मती- । जोगा नव्हसी ॥ १७४ ॥ तुझें वाक्य व्यक्ती न येतां देवा । जो आपुलिया जाणे जाणिवा । तो कहींचि नोहे हें मद्भावा । भरंवसेनि आलें ॥१७५॥

स्वयमेवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम । भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५॥

एथ आपुलें वाढपण जैसें । आपणचि जाणिजे आकाशें । कां मी येतुली घनवट ऐसें । पृथ्वीचि जाणे ॥ १७६ ॥ तैसा आपुलिये सर्वशक्ती । तुज तूंचि जाणसी लक्ष्मीपती । येर वेदादिक मती । मिरवती वायां ॥ १७७ ॥ हां गा मनातें मागां सांडावें । पवनातें वावीं मवावें । आदिशून्य तरोनि जावें । केउतें बाहीं ॥ १७८ ॥ तैसें हें तुझें जाणणें आहे । म्हणौनि कोणाही ठाउकें नोहे । आतां तुझें ज्ञान होये । तुजचिजोगें ॥ १७९ ॥ जी आपणयातें तूंचि जाणसी । आणिकातें सांगावयाही समर्थ होसी । तरी आतां एक वेळ घाम पुसीं । आर्तीचिये निडळींचा ॥१८०॥ हें आइकिलें कीं भूतभावना । त्रिभुवनगजपंचानना । सकळदेवदेवतार्चना । जगन्नायका ॥ १८१ ॥ जरी थोरी तुझी पाहात आहों । तरी पासीं उभे ठाकावयाही योग्य नोहों । या शोच्यता जरी विनवूं बिहों । तरी आन उपायो नाहीं ॥८२॥ भरले समुद्र सरिता चहुंकडे । परि ते बापियासि कोरडे । कां जैं मेघौनि थेंबुटा पडे । तैं पाणी कीं तया ॥ ८३ ॥

तैसे श्रीगुरु सर्वत्र आथी । परि कृष्णा आम्हां तूंचि गती । हें असो मजप्रती । विभूती सांगें ॥ १८४ ॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः । याभिर्विभूतिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६॥

जी तुझिया विभूती आघविया । परि व्यापिती शक्ति दिव्या जिया । तिया आपुलिया दावाविया । आपण मज ॥ १८५ ॥ जिहीं विभूतीं ययां समस्तां । लोकांतें व्यापूनि आहासी अनंता । तिया प्रधाना नामांकिता । प्रगटा करीं ॥ १८६ ॥ कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् । केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥ १७॥

जी कैसें मियां जाणावें । काय जाणोनि सदा चिंतावें । जरी तूंचि म्हणों आघवें । तिर चिंतनचि न घडे ॥ १८७ ॥ म्हणौनि मागां भाव जैसे । आपुले सांगितले तुवां उद्देशें । आतां विस्तारोनि तैसे । एक वेळ बोलें ॥ १८८ ॥ जया जया भावाचिया ठायीं । तूंतें चिंतितां मज सायासु नाहीं । तो विवळ करूनि देईं । योगु आपुला ॥ १८९ ॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन । भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८॥

आणि पुसलिया जिया विभूती । त्याही बोलाविया भूतपती । येथ म्हणसी जरी पुढती । काय सांगों ॥ १९० ॥

तरी हा भाव मना । झणें जाय हो जनार्दना । पैं प्राकृताही अमृतपाना । ना न म्हणवे जेवीं ॥ १९१ ॥ जे काळकूटाचें सहोदर । जें मृत्यूभेणें प्याले अमर । तरि दिहाचे पुरंदर । चौदा जाती ॥ १९२ ॥ ऐसा कवण एक क्षीराब्धीचा रसु । जया वायांचि अमृतपणाचा आभासु । तयाचाही मीठांशु । जे पुरे म्हणों नेदी ॥९३॥ तया पाबळेयाही येतुलेवरी । गोडियेचि आथि थोरी । मग हें तंव अवधारीं । परमामृत साचें ॥ १९४ ॥ जें मंदराचळु न ढाळितां । क्षीरसागरु न डहुळितां । अनादि स्वभावता । आइतें आहे ॥ १९५ ॥ जें द्रव ना नव्हे बद्ध । जेथ नेणिजती रस गंध । जें भलतयांही सिद्ध । आठवलेंचि फावे ॥ १९६ ॥ जयाची गोठीचि ऐकतखेंवो । आघवा संसारु होय वावो । बळिया नित्यता लागे येवों । आपणपेंया ॥ १९७ ॥ जन्ममृत्यूची भाख । हारपोनि जाय निःशेख । आंत बाहेरी महासुख । वाढोंचि लागे ॥ १९८ ॥ मग दैवगत्या जरी सेविजे । तरी तें आपणचि होऊनि ठाकिजे । तें तुज देतां चित्त माझें । पुरें म्हणों न शके ॥ २९९ ॥ तुझें नामचि आम्हां आवडे । वरि भेटी होय आणि जवळिक जोडे । पाठीं गोठी सांगसी सुरवाडें । आनंदाचेनी ॥ २०० ॥ आतां हें सुख कायिसयासारिखें । कांहीं निर्वचेना मज परितोखें । तरि येतुलें जाणें जे येणें मुखें । पुनरुक्तही हो ॥०१॥ हां गा सूर्य काय शिळा । अग्नि म्हणों येत आहे वोंविळा

कां नित्य वाहातया गंगाजळा । पारसेपण असे ॥ २०२ ॥ तुंवा स्वमुखें जें बोलिलें । हें आम्हीं नादासि रूप देखिलें । आजि चंदनतरूचीं फुलें । तुरंबीत आहों मां ॥ २०३ ॥ तया पार्थाचिया बोला । सर्वांगें श्रीकृष्ण डोलला । म्हणे भक्तिज्ञानासि जाहला । आगरु हा ॥ २०४ ॥ ऐसा पितकराचिया तोषा आंतु । प्रेमाचा वेगु उचंबळतु । सायासें सांवरूनि अनंतु । काय बोले ॥ २०५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः । प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥ १९॥

मी पितामहाचा पिता । हें आठिवतांही नाठवे चित्ता । कीं म्हणतसे बा पंडुसुता । भलें केलें ॥ २०६ ॥ अर्जुनातें बा म्हणे एथ कांहीं । आम्हां विस्मो करावया कारण नाहीं । आंगें तो लेंकरूं काई । नव्हेचि नंदाचें ॥ २०७ ॥ पिर प्रस्तुत ऐसें असो । हें करवी आवडीचा अतिसो । मग म्हणे आइकें सांगतसों । धनुर्धरा ॥ २०८ ॥ तरी तुवां पुसलिया विभूती । तयांचें अपारपण सुभद्रापती । ज्या माझियाचि पिर माझिये मती । आकळती ना ॥ २०९ ॥ आंगींचिया रोमा किती । जयाचिया तयासि न गणवती । तैसिया माझिया विभूती । असंख्य मज ॥ २१० ॥ ए-हवीं तरी मी कैसा केवढा । म्हणौनि आपणपयांही नव्हेचि फुडा । यालागीं प्रधाना जिया रूढा । तिया आइकें ॥ २११ ॥

जिया जाणतिलयासाठीं । आघवीया जाणवतील किरीटी । जैसें बीज आलिया मुठीं । तरूचि आला होय ॥ २१२ ॥ कां उद्यान हाता चिढन्नलें । तरी आपैसीं सांपडलीं फळें फुलें । तेवीं देखिलिया जिया देखवलें । विश्व सकळ ॥ २१३ ॥ ए-हवीं साचिच गा धनुर्धरा । नाहीं शेवटु माझिया विस्तारा । पैं गगना ऐशिया अपारा । मजमाजीं लपणें ॥ २१४ ॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः । अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ २०॥

आइकें कुटिलालकमस्तका । धनुर्वेदत्र्यंबका ।
मी आत्मा असें एकैका । भूतमात्राच्या ठायीं ॥ २१५ ॥
आंतुलीकडे मीचि यांचे अंत:करणीं । भूतांबाहेरी माझीच
गंवसणी । आदि मी निर्वाणीं । मध्यही मीचि ॥ २१६ ॥
जैसें मेघां या तळीं वरी । एक आकाशचि आंत बाहेरी ।
आणि आकाशींचि जाले अवधारीं । असणेंही आकाशीं ॥१७॥
पाठीं लया जे वेळीं जाती । ते वेळीं आकाशचि होऊनि ठाती
। तेवीं आदि स्थिती गती । भूतांसि मी ॥ २१८ ॥
ऐसें बहुवस आणि व्यापकपण । माझें विभूतियोगें जाण ।
तरी जीवचि करूनि श्रवण । आइकोनि आइक ॥ २१९ ॥
याहीवरी त्या विभूती । सांगणें ठेलें सुभद्रापती ।
सांगेन म्हणितलें तुजप्रती । त्या प्रधाना आइकें ॥ २२० ॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् । मरीचिर्मरूतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१॥

< (2) < (2) < (2) < (2) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3)

हें बोलोनि तो कृपावंतु । म्हणे विष्णु मी आदित्यांआंतु । रवी मी रश्मिवंतु । सुप्रभांमाजीं ॥ २२१ ॥ मरूद्गणांच्या वर्गीं । मरीचि म्हणे मी शारङ्गी । चंद्रु मी गगनरंगीं । तारांमाजीं ॥ २२२ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः । इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२॥

वेदांआंतु सामवेदु । तो मी म्हणे गोविंदु । देवांमाजी मरुद्बंधु । महेंद्रु तो मी ॥ २२३ ॥ इंद्रियांमाजीं अकरावें । मन तें मी हें जाणावें । भूतांमाजी स्वभावें । चेतना ते मी ॥ २२४ ॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् । वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २३॥

अशेषांही रुद्रांमाझारीं । शंकर जो मदनारी । तो मी येथ न धरीं । भ्रांति कांहीं ॥ २२५ ॥ यक्षरक्षोगणांआंतु । शंभूचा सखा जो धनवंतु । तो कुबेरु मी हें अनंतु । म्हणता जाहला ॥ २२६ ॥ मग आठांही वसूंमाझारीं । पावकु तो मी अवधारीं । शिखराथिलियां सर्वोपरी । मेरु तो मी ॥ २२७ ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् । सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥ २४॥ महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् । यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५॥

जो स्वर्गसिंहासना सावावो । सर्वज्ञते आदीचा ठावो । तो पुरोहितांमाजीं रावो । बृहस्पती मी ॥ २२८ ॥ त्रिभुवनींचिया सेनापतीं- आंत स्कंदु तो मी महामती । जो हरवीर्यं अग्निसंगती । कृत्तिकाआंतु जाहला ॥ २२९ ॥ सकळिकां सरोवरांसी । माजीं समुद्र तो मी जळराशी । महर्षीं आंतु तपोराशी । भृगु तो मी ॥ २३० ॥ अशेषांही वाचा- । माजीं नटनाच सत्याचा । तें अक्षर एक मी वैकुंठींचा । वेल्हाळु म्हणे ॥ २३१ ॥ समस्तांही यज्ञांच्या पैकीं । जपयज्ञु तो मी ये लोकीं । जो कर्मत्यागें प्रणवादिकीं । निफजविजे ॥ २३२ ॥ नामजपयज्ञु तो परम । बाधूं न शके स्नानादि कर्म । नामें पावन धर्माधर्म । नाम परब्रह्म वेदार्थें ॥ २३३ ॥ स्थावरां गिरीआंतु । पुण्यपुंज जो हिमवंतु । तो मी म्हणे कांतु । लक्ष्मियेचा ॥ २३४ ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः । गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६॥

उच्चै:श्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् । ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७॥ कल्पद्रुम हन पारिजातु । गुणें चंदनुही वाड विख्यातु । तिर ययां वृक्षजातांआंतु । अश्वत्थु तो मी ॥ २३५ ॥ देवऋषींआंतु पांडवा । नारदु तो मी जाणावा । चित्ररथु मी गंधवां । सकळिकांमाजीं ॥ २३६ ॥ ययां अशेषांही सिद्धां- । माजीं किपलाचार्यु मी प्रबुद्धा । तुरंगजातां प्रसिद्धां- । आंत उचै:श्रवा मी ॥ २३७ ॥ राजभूषण गजांआंतु । अर्जुना मी गा ऐरावतु । पयोराशी सुरमिथतु । अमृतांशु तो मी ॥ २३८ ॥ ययां नरांमाजीं राजा । तो विभूतिविशेष माझा । जयातें सकळ लोक प्रजा । होऊनि सेविती ॥ २३९ ॥

<<p><</p>
<</p>

<</p>
<</p>
<</p>
<</p>

<</p>

</

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् । प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८॥

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् । पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९॥

पैं आघवेयां हातियेरां- । आंत वज्र तें मी धनुर्धरा । जें शतमखोत्तीर्णकरा । आरूढोनि असे ॥ २४० ॥ धेनूंमध्यें कामधेनु । तें मी म्हणे विष्वक्सेनु । जन्मवितयाआंत मदनु । तो मी जाणें ॥ २४१ ॥ सर्पकुळाआंत अधिष्ठाता । वासुकी गा मी कुंतीसुता । नागांमाजीं समस्तां । अनंतु तो मी ॥ २४२ ॥ अगा यादसांआंतु । जो पश्चिम प्रमदेचा कांतु । तो वरुण मी हें अनंतु । सांगत असे ॥ २४३ ॥

आणि पितृगणां समस्तां- । माजीं अर्यमा जो पितृदेवता । तो मी हें तत्त्वता । बोलत आहें ॥ २४४ ॥ जगाचीं शुभाशुभें लिहिती । प्राणियांच्या मानसांचा झाडा घेती । मग केलियानुरूप होती । भोगनियम जे ॥ २४५ ॥ तयां नियमितयांमाजीं यमु । जो कर्मसाक्षी धर्मु । तो मी म्हणे आत्मारामु । रमापती ॥ २४६ ॥

\$><\$><\$><\$><\$><\$>

प्रल्हादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् । मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३०॥

अगा दैत्यांचिया कुळीं । प्रल्हादु तो मी न्याहाळीं । म्हणौन दैत्यभावादि मेळीं । लिंपेचि ना ॥ २४७ ॥ पैं कळितयांमाजीं महाकाळु । तो मी म्हणे गोपाळु । श्वापदांमाजीं शार्दूळु । तो मी जाण ॥ २४८ ॥ पक्षिजातिमाझारीं । गरुड तो मी अवधारीं । यालागीं जो पाठीवरी । वाहों शके मातें ॥ २४९ ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् । झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जान्हवी ॥ ३१॥

पृथ्वीचिया पैसारा- । माजीं घडीं न लगतां धनुर्धरा । एकेचि उड्डाणें सातांहि सागरां । प्रदक्षिणा कीजे ॥ २५० ॥ तयां वहिलियां गतिमंतां- । आंत पवनु तो मी पंडुसुता । शस्त्रधरां समस्तां- । माजीं श्रीराम तो मी ॥ २५१ ॥ जेणें सांकडलिया धर्माचें कैवारें । आपणपयां धनुष्य करूनि

दुसरें । विजयलिक्ष्मये एक मोहरें । केलें त्रेतीं ॥ २५२ ॥ पाठीं उभे ठाकूनि सुवेळीं । प्रतापलंकेश्वराचीं सिसाळीं । गगनीं उदो म्हणतया हस्तबळीं । दिधली भूतां ॥ २५३ ॥ जेणें देवांचा मानु गिंवसिला । धर्मासि जीणोंद्धारु केला । सूर्यवंशीं उदेला । सूर्य जो कां ॥ २५४ ॥ तो हातियेरुपरजितया आंतु । रामचंद्र मी जानकीकांतु । मकर मी पुच्छवंतु । जळचरांमाजीं ॥ २५५ ॥ पैं समस्तांही वोघां- । मध्यें जे भगीरथें आणितां गंगा । जन्हूनें गिळिली मग जंघा । फाडूनि दिधली ॥ २५६ ॥ ते त्रिभूवनैकसरिता । जान्हवी मी पंडुसुता । जळप्रवाहां समस्तां- । माझारीं जाणें ॥ २५७ ॥ ऐसेनि वेगळालां सृष्टीपैकीं । विभूती नाम सूतां एकेकीं । सगळेन जन्मसहस्रें अवलोकीं । अर्ध्या नव्हती ॥ २५८ ॥

><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन । अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ३२॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च । अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥ ३३॥

जैसीं अवधींचि नक्षत्रें वेंचावीं । ऐसी चाड उपजेल जैं जीवीं । तैं गगनाची बांधावी । लोथ जेवीं ॥ २५९ ॥ कां पृथ्वीये परमाणूंचा उगाणा घ्यावा । तिर भूगोलुचि काखे सुवावा । तैसा विस्तारु माझा पहावा । तिर जाणावें मातें ॥२६०॥ जैसें शाखांसी फूल फळ । एकिहेळां वेटाळूं म्हणिजे सकळ ।

तरी उपडूनियां मूळ । जेवीं हातीं घेपे ॥ २६१ ॥ तेवीं माझें विभूतिविशेष । जरी जाणों पाहिजेती अशेष । तरी स्वरूप एक निर्दोष । जाणिजे माझें ॥ २६२ ॥ ए-हवीं वेगळालिया विभूती । कायिक परिससी किती । म्हणौनि एकिहेळां महामती । सर्व मी जाण ॥ २६३ ॥ मी आघवियेचि सृष्टी । आदिमध्यांतीं किरीटी । ओतप्रोत पटीं । तंतु जेवीं ॥ २६४ ॥ ऐसिया व्यापका मातें जैं जाणावें । तैं विभूतिभेदें काय करावें । परि हे तुझी योग्यता नव्हे । म्हणौनि असो ॥ २६५ ॥ कां जे तुवां पुसिलिया विभूती । म्हणौनि तिया आईक सुभद्रापती । तरी विद्यांमाजीं प्रस्तुतीं । अध्यात्मविद्या ते मी ॥६६॥ अगा बोलतयांचिया ठायीं । वादु तो मी पाहीं । जो सकलशास्त्रसंमतें कहीं। सरेचिना ॥ २६७ ॥ जो निर्वचूं जातां वाढे । आइकतयां उत्प्रेक्षे सळु चढे । जयावरी बोलतयांचीं गोडें । बोलणीं होतीं ॥ २६८ ॥ ऐसा प्रतिपादनामाजीं वादु । तो मी म्हणे गोविंदु । अक्षरांमाजीं विशदु । अकारु तो मी ॥ २६९ ॥ पैं गा समासांमाझारीं । द्वंद्व तो मी अवधारीं । मशकालागोनि ब्रह्मावेरीं । ग्रासिता तो मी ॥ २७० ॥ मेरुमंदरादिकीं सर्वीं । सहित पृथ्वीतें विरवी । जो एकार्णवातेंही जिरवी । जेथिंचा तेथ ॥ २७१ ॥ जो प्रळयतेजा देत मिठी । सगळिया पवनातें गिळी किरीटी । आकाश जयाचिया पोटीं । सामावलें ॥ २७२ ॥

)><</p>

एसा अपार जो काळु । तो मी म्हणे लक्ष्मीलीळु । मग पुढती सृष्टीचा मेळु । सृजिता तो मी ॥ २७३ ॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् । कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥ ३४॥

आणि सृजिलिया भूतांतें मीचि धरीं । सकळां जीवनही मीचि अवधारीं । शेखीं सर्वांतें या संहारीं । तेव्हां मृत्युही मीचि ॥७४॥ आतां स्त्रीगणांच्या पैकीं । माझिया विभूती सात आणिकी । तिया ऐक कवितकीं । सांगिजतील ॥ २७५ ॥ तरी नित्य नवी जे कीर्ति । अर्जुना ते माझी मूर्ती । आणि औदार्येंसी जे संपत्ती । तेही मीचि जाणें ॥ २७६ ॥ आणि ते गा मी वाचा । जे सुखासनीं न्यायाचा । आरूढोनि विवेकाचा । मार्गीं चाले ॥ २७७ ॥ देखिलेनि पदार्थें । जे आठवूनि दे मातें । ते स्मृतिही एथें । त्रिशुद्धी मी ॥ २७८ ॥ पैं स्विहता अनुयायिनी । मेधा ते गा मी इये जनीं । धृती मी त्रिभुवनीं । क्षमा ते मी ॥ २७९ ॥ एवं नारींमाझारीं । या सातही शक्ति मी अवधारीं । ऐसें संसारगजकेसरी । म्हणता जाहला ॥ २८० ॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् । मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५॥ वेदराशीचिया सामा- । आंत बृहत्साम जें प्रियोत्तमा । तें मी म्हणे रमा- । प्राणेश्वरु ॥ २८१ ॥ गायत्रीछंद जें म्हणिजे । तें सकळां छंदांमाजीं माझें । स्वरूप हें जाणिजे । निभ्रांत तुवां ॥ २८२ ॥ मासांआंत मार्गशीरु । तो मी म्हणे शारङ्गधरु । ऋतूंमाजीं कुसुमाकरु । वसंतु तो मी ॥ २८३ ॥

4\$>4\$>4\$>4\$>4\$>4\$>4\$>4\$>4\$>4\$>

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् । जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३६॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः । मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ३७॥

छितयां विंदाणा- । माजीं जूं तें मी विचक्षणा ।
म्हणौनि चोहटां चोरी परी कवणा । निवारूं न ये ॥ २८४ ॥
अगा अशेषांही तेजसां- । आंत तेज तें मी भरंवसा ।
विजयो मी कार्योद्देशां । सकळांमाजीं ॥ २८५ ॥
जेणें चोखाळत दिसे न्याय । तो व्यवसायांत व्यवसाय ।
माझें स्वरूप हें राय । सुरांचा म्हणे ॥ २८६ ॥
सत्त्वाधिलियांआंतु । सत्त्व मी म्हणे अनंतु ।
यादवांमाजीं श्रीमंतु । तोचि तो मी ॥ २८७ ॥
जो देवकी-वसुदेवास्तव जाहला । कुमारीसाठीं गोकुळीं गेला
। तो मी प्राणासकट पियाला । पूतनेतें ॥ २८८ ॥
नुघडतां बाळपणाची फुली । जेणें मियां अदानवीं सृष्टि केली
। करीं गिरि धरूनि उमाणिली । महेंद्रमहिमा ॥ २८९ ॥

कालिंदीचें हृदयशल्य फेडिलें । जेणें मियां जळत गोकुळ राखिलें । वासरुवांसाठीं लाविलें । विरंचीस पिसें ॥ २९० ॥ प्रथमदशेचिये पहांटे- । मार्जी कंसा ऐशीं अचाटें । महाधेंडीं अवचटें । लीळाचि नासिलीं ॥ २९१ ॥ हें काय कितीक सांगावें । तुवांही देखिलें ऐकिलें असे आघवें । तिर यादवांमार्जीं जाणावें । हेंचि स्वरूप माझें ॥ २९२ ॥ आणि सोमवंशीं तुम्हां पांडवां- । मार्जी अर्जुन तो मी जाणावा । म्हणौनि एकमेकांचिया प्रेमभावा । विघडु न पडे ॥२९३॥ संन्यासी तुवां होऊनि जनीं । चोरूनि नेली माझी भिगनी । तर्ही विकल्पु नुपजे मनीं । मी तूं दोन्ही स्वरूप एक ॥२९४॥ मुनीआंत व्यासदेवो । तो मी म्हणे यादवरावो । कवीश्वरांमार्जीं धैर्या ठावो । उशनाचार्य तो मी ॥ २९५ ॥

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् । मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८॥ अगा दिमतयांमाझारीं । अनिवार दंडु तो मी अवधारीं । जो मुंगियेलागोनि ब्रह्मावेरीं । नियमित पावे ॥ २९६ ॥ पैं सारासार निर्धारितयां । धर्मज्ञानाचा पक्षु धरितयां । सकळ शास्त्रांमाजीं ययां । नीतिशास्त्र तें मी ॥ २९७ ॥ आघिवयाचि गूढां- । माजीं मौन तें मी सुहाडा । म्हणौनि न बोलतयां पुढां । स्त्रष्टाही नेण होय ॥ २९८ ॥ अगा ज्ञानियांचिया ठायीं । ज्ञान तें मी पाहीं । आतां असो हें ययां कांहीं । पार न देखों ॥ २९९ ॥ यच्चाऽपि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन । न तदसेति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९॥

नान्तोऽस्ति मम दिव्यांना विभूतीनां परंतप । एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४०॥

पैं पर्जन्याचिया धारां । वरी लेख करवेल धनुर्धरा । कां पृथ्वीचिया तृणांकुरां । होईल ठी ॥ ३०० ॥ पैं महोदधीचिया तरंगां । व्यवस्था धरूं नये जेवीं गा । तेवीं माझिया विशेषलिंगां । नाहीं मिती ॥ ३०१ ॥ ऐशियाही सातपांच प्रधाना । विभूती सांगितलिया तुज अर्जुना । तो हा उद्देशु जो गा मना । आहाच गमला ॥३०२॥ येरां विभृतिविस्तारांसि कांहीं । एथ सर्वथा लेख नाहीं । म्हणौनि परिससीं तूं काई । आम्हीं सांगों किती ॥ ३०३ ॥ यालागीं एकिहेळां तुज । दाऊं आतां वर्म निज । तरी सर्व भूतांकुरें बीज । विरूढत असे तें मी ॥ ३०४ ॥ म्हणौनि सानें थोर न म्हणावें । उंच नीच भाव सांडावे । एक मीचि ऐसें मानावें । वस्तुजातातें ॥ ३०५ ॥ तरी यावरी साधारण । आईक पां आणिकही खूण । तरी अर्जुना तें तूं जाण । विभूति माझी ॥ ३०६ ॥

> यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्त्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥ ४१॥

जेथ जेथ संपत्ति आणि दया । दोन्ही वसती आलिया ठाया । ते ते जाण धनंजया । विभूति माझी ॥ ३०७ ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन । विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ४२॥

ॐ तत्सिदिति श्रीमद्भावद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्याय:॥१०॥

अथवा एकलें एक बिंब गगनीं । प्रभा फांके त्रिभुवनीं । तेवीं एकाकियाची सकळ जनीं । आज्ञा पाळिजे ॥ ३०८ ॥ तयांतें एकलें झणीं म्हण । तो निर्धन या भाषा नेण । काय कामधेन् सर्वे सर्वस्व हन । चालत असे ॥ ३०९ ॥ तियेतें जें जेधवां जो मागे । तें ते एकसरेंचि प्रसवों लागे । तेवीं विश्वविभव तया आंगें । होऊनि असती ॥ ३१० ॥ तयातें वोळखावया हेचि संज्ञा । जे जगें नमस्कारिजे आज्ञा । ऐसें आथि तें जाण प्राज्ञा । अवतार माझे ॥ ३११ ॥ आणि सामान्य विशेष । हें जाणणें एथ महादोष । कां जे मीचि एक अशेष । विश्व हें म्हणौनि ॥ ३१२ ॥ तरी आतां साधारण आणि चांगु । ऐसा कैसेनि पां कल्पावा विभागु । वायां आपुलिये मती वंगु । भेदाचा लावावा ॥३१३॥ ए-हवीं तूप कासया घुसळावें । अमृत कां रांधूनि अर्धें करावें । हां गा वायुसि काय पां डावें । उजवें आंग आहे ॥३१४॥ पैं सूर्यबिंबासि पोट पाठीं । पाहतां नासेल आपुली दिठी । तेवीं माझ्या स्वरूपीं गोठी । सामान्यविशेषाची नाहीं ॥३१५॥

आणि सिनाना इहीं विभूतीं । मज अपारातें मविसील किती । म्हणौनि किंबहुना सुभद्रापती । असो हें जाणणें ॥ ३१६ ॥ आतां पैं माझेनि एकें अंशें । हें जग व्यापिलें असे । यालागीं भेदू सांडूनि सरिसें। साम्यें भज॥ ३१७॥ ऐसें विबुधवनवसंतें । तेणें विरक्तांचेनि एकांतें । बोलिलें जेथ श्रीमंतें । श्रीकृष्णदेवें ॥ ३१८ ॥ तथ अर्जुन म्हणे स्वामी । येतुलें हें राभस्य बोलिलें तुम्हीं । जे भेदु एक आणि आम्ही । सांडावा एकीं ॥ ३१९ ॥ हां हो सूर्य म्हणे काय जगातें। अंधारें दवडा कां परौतें। तेवीं धसाळ म्हणों देवा तूंतें । तरी अधिक हा बोलु ॥३२०॥ तुझें नामचि एक कोण्ही वेळे । जयांचिये मुखासि कां कानां मिळे । तयांचिया हृदयातें सांडूनि पळे । भेदु जी साच ॥३२१॥ तो तूं परब्रह्मचि असकें । मज दैवें दिधलासि हस्तोदकें । तरी आतां भेदु कायसा कें । देखावा कवणें ॥ ३२२ ॥ जी चंद्रबिंबाचा गाभारां । रिगालियावरीही उबारा । परी राणेपणें शारङ्गधरा । बोला हें तुम्हीं ॥ ३२३ ॥ तेथ सावियाचि परितोषोनि देवें । अर्जुनातें आलिंगिलें जीवें । मग म्हणे तुवां न कोपावें । आमुचिया बोला ॥ ३२४ ॥ आम्हीं तुज भेदाचिया वाहाणीं । सांगितली जे विभूतींची कहाणी । ते अभेदें काय अंतःकरणीं । मानिली कीं न मनें ॥३२५॥ हेंचि पाहावयालागीं । नावेक बोलिलों बाहेरिसवडिया भंगीं । तंव विभूती तुज चांगी । आलिया बोधा ॥ ३२६ ॥ तथ अर्जुन म्हणे देवें । हें आपुलें आपण जाणावें ।

<</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>

परी देखतसें विश्व आघवें । तुवां भरलें ॥ ३२७ ॥ पैं राया तो पंडुसुतु । ऐसिये प्रतीतीसि जाहला वरितु । या संजयाचिया बोला निवांतु । धृतराष्ट्र राहे ॥ ३२८ ॥ कीं संजयो दुखवलेनि अंतः करणें। म्हणतसे नवल नव्हे दैव दवडणें । हा जीवें धाडसा आहे मी म्हणें । तंव आंतुही आंधळा ॥२९॥ परी असो हें तो अर्जुनु । स्वहिताचा वाढवितसे मानु । कीं याहीवरी तया आनु । धिंवसा उपनला ॥ ३३० ॥ म्हणे हेचि हृदया आंतुली प्रतीती । बाहेरी अवतरो कां डोळ्यांप्रती । इये आर्तीचिया पाउलीं मती । उठती जाहली ॥३१॥ मियां इहींच दोहीं डोळां । झोंबावें विश्वरूपा सकळा । एवढी हांव तो देवा आगळा । म्हणौनि करी ॥ ३३२ ॥ आजि तो कल्पतरूची शाखा । म्हणौनि वांझोळें न लगती देखा । जें जें येईल तयाचि मुखा । तें तें साचचि करितसे येरु ॥३३॥ जो प्ररहादाचिया बोला । विषाहीसकट आपणचि जाहला । तो सद्गुरु असे जोडला । किरीटीसी ॥ ३३४ ॥ म्हणौनि विश्वरूप पुसावयालागीं । पार्थ रिगता होईल कवणें भंगीं । तें सांगेन पुढिलिये प्रसंगीं । ज्ञानदेव म्हणे निवृत्तीचा ॥३५॥ इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां दशमोऽध्यायः ॥

<<p><</p>
<</p>

<

< (2) > < (2) > < (2) > < (2) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3)

॥ रामकृष्णहरि ॥

सेवाभावी संतचरणरज

बाळकृष्ण प्रकाश कदम

जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर
(इतर PDF ग्रंथासाठी संपर्क - ९७६५६५३८०५)

() > 4 () >